कुशल प्रक्षेत्र प्रबन्धन के आयाम

*राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेलः raghwendkumar@gmail.com

चाणक्य के अर्थशास्त्र का आज भी हमारे जनमानस में व्यापक महत्व है। जीवन और समृद्धि से जुड़े, सभी प्रकार के आर्थिक कार्य–कलापों में 'लेन–देन' का अनवरत सिलसिला वर्षों से चला आ रहा है जो मानव के विकास तथा अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

महान अर्थशास्त्री स्मिथ ने वर्षों पहले अर्थशास्त्र को धन, सम्पत्ति और समृद्धि का विशेष ज्ञान बतलाया तो, वहीं मार्शल जैसे अर्थवादी चिन्तक ने इसे हमारे जीवन के प्रत्येक दिन समस्त व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक सक्रियता तथा स्वभाव का अध्ययन माना है। आधुनिक काल में व्यक्ति विशेष की व्यावसायिक गतिविधियों जैसे खेती, किसानी को व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र (माईक्रोइकोनॉमिक्स) तथा सामूहिक आर्थिक कार्य–कलापों को समष्टि अर्थव्यवस्था (मैक्रोइकोनॉमिक्स) के अन्तर्गत परिभाषित किया जाता है। इस क्रम में यह सर्वविदित है कि कृषि हमारे जीवन यापन के लिए सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जबकि कृषि एक जोखिम का धंधा है, इन दोनों कथन के पीछे मूल रूप से कहीं न कहीं चिन्ता छिपी है। कृषि प्रधान होते हुए भी हमारे देश के किसान के पास खेती करने की औसतन भूमि जिसे जोत कहा जाता है सबसे कम लगभग 1.5 हेक्टेयर है। आस्ट्रेलिया, कनाडा, अमेरिका में जहाँ औसतन जोत क्रमशः अधिक है जबकि ताजा आँकड़ों के मुताबिक भारत में कम खेती योग्य भूमि बची है। खेती की जमीन और वन सम्पदा को नष्ट करके कंक्रीट के जंगल बसाए जा रहे है, विवेकहीन औद्योगिकीकरण से प्रदूषण तथा जल संसाधन के संकट पैदा होने लगे है। खेतिहर किसान शहरों की तरफ भागकर मजदूर बनते जा रहे है।

खाद्यान्न के संकट से उबरने के लिए विदेशों से अनाज मँगाया जा रहा है और ऐसे तमाम कुनीतिगत आर्थिक संजाल निःसन्देह जिम्मेदार है। हाँलाकि इन दिनों समाज और सरकार का ध्यान कृषि के विकास की तरफ गया है किन्तु ढेर सारी आर्थिक समस्याओं को नज़र–अन्दाज नहीं किया जा सकता। जनसंख्या विस्फोट, जल संकट तथा पर्यावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड का तेजी से बढ़ रहा खतरनाक स्तर जिसे 'ग्लोबल वॉर्मिंग' कहा जाता है, आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है।

तमाम नीतिगत बाधाओं के सुखद समाधान में कुशल कृषि प्रबन्धन की अहम भूमिका है। टुकड़ों में बँटी जोत को विस्तार देना बहुत जरूरी है। सहकारी, संयुक्त तथा सामूहिक कृषि इस दिशा में व्यापक बदलाव ला सकते है। दूसरी तरफ कृषि के व्यवसायीकरण की दिशा में संसाधनों का भरपूर दोहन होता है।

कृषि अर्थशास्त्र का महत्व

सामान्य अर्थशास्त्र की अति विशिष्ट शाखा कृषि अर्थशास्त्र या एग्रोनॉमिक्स के अन्तर्गत फसल उत्पादन तथा कृषि सम्बन्ध रखने वाले अन्य आर्थिक क्रिया–कलाप जैसे पशु पालन, फल उत्पादन, मत्स्य पालन, डेयरी, वानिकी इत्यादि शामिल होते हैं। किसी भी राष्ट्र के विकास में कृषि का व्यापक महत्व जैसे खाद्य व्यवस्था, उद्योग के लिए कच्चे माल की उपलब्धता, सेवा योजन, पर्यावरण के प्रदूषण स्तर को नियंत्रित रखने, जल सम्पदा की संरक्षा इत्यादि होता है। हाँलाकि कृषि व्यवसाय की अनेक समस्याएँ जैसे कृषि कार्य हेतु संसाधनों की व्यवस्था, पैदावार में वृद्धि, जनसंख्या दबाव, उपज का कुशल विपणन इत्यादि महत्वपूर्ण है।

कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कृषि में उपयोग में लाए जा रहे संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्ति के लक्ष्य का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही प्रक्षेत्र प्रबन्धन, भूमि सुधार, जोत सम्बन्धित विसंगतियों का निराकरण,

श्रमिकों की मजदूरी से जुड़े श्रम सम्बन्धित कानूनी मसले, किसानों के वित्त से सम्बन्धित ऋण, बीमा तथा विपणन से जुड़े कृषि संवृद्धि तथा विकास की योजनाओं का समावेश होता है। कृषि अर्थशास्त्र का मुख्य मापदण्ड मुद्रा है जो वस्तुओं के मूल्य परिवर्तन के कारण बदलता रहता है। हाँलाकि किसानों की व्यक्तिगत समस्याएँ जो धन से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जुड़ी नहीं होती, उनका अध्ययन नहीं किया जाता है।

प्रक्षेत्र प्रबन्धन के आयाम

प्रक्षेत्र प्रबन्धन कृषि अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत खेती किसानी से जुड़े सभी प्रकार के कार्य एक विशिष्ट प्रबन्धन के माध्यम से सम्पन्न किया जाते हैं। इसके अन्तर्गत खेती के लिए जरूरी संसाधन जैसे भूमि, बीज, सिंचाई, उर्वरक, यांत्रिक उपकरण इत्यादि के एवज में उत्पादन से प्राप्त शुद्ध आय में बढ़ोत्तरी होना अनिवार्य लक्ष्य होता है। साधारण शब्दों में कहे तो कुशल प्रक्षेत्र प्रबन्धन के माध्यम से कम से कम खर्च, हानि/हर्जाना, श्रमिकों के अक्षमता, बेरोजगारी के एवज में ज्यादा से ज्यादा लाभ, उत्पादन, दक्ष, मानव संसाधन तथा समग्र रोजगार सृजन होते रहना आवश्यक है।

कृषि कार्य से कैसे अधिकतम उत्पादन तथा लाभ प्राप्त किया जाए और, कैसे उत्पादन लागत को काबू में रखा जाए? इन दो प्रश्नों के समाधान में प्रक्षेत्र प्रबन्धन से जुड़े सभी क्रिया–कलाप सुलभतापूर्वक पारिभाषित होते है। उत्पादन में बढ़ोत्तरी के लिए श्रमिकों तथा खेती से जुड़े तमाम कार्य नियत समय पर सम्पन्न होना जरूरी है। बुवाई से लेकर कटाई तक के समग्र कार्य में मौसम की पृकृति को ध्यान में रखना होता है।

फसल–चक्र, सहफसली कृषि प्रणाली तथा मृदा परीक्षण के अनुकूल सभी प्रकार के किसानी कार्य जैसे सिंचाई खर–पतवार, कीट तथा रोग नियंत्रण, गुड़ाई, उर्वरक तथा अन्य कार्यों की देख–रेख में खास दिशा–निर्देश का व्यापक महत्व होता है। नुकसान को काबू में रखने के लिए अन्य कृषि उपक्रमों का समावेश जरूरी होता है जिसमें पशुपालन, मधुपालन, जल संचन की उपलब्धता की स्थिति में मछली पालन, सामाजिक वानिकी, फल–फूल उत्पादन इत्यादि शामिल होते है। इससे लागत खर्च को नियंत्रित करने में सहयोग मिलता है तो अनेक लम्बित परियोजनाओं को शुरू करने के लिए पूंजीगत संसाधनों में बढ़ोत्तरी होती है। ट्रैक्टर संचालित उपकरण जैसे फसलों के कटाई में उपयोगी

कम्बाइंड हार्वेस्टर, टपक सिंचाई व्यवस्था, जल संचयन हेतु तालाब का निर्माण जैसे बृहद कार्य योजना आदि प्रमुख है।

इन सबके अलावा कृषि से जुड़े संसाधनों की देखभाल जरूरी होता है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से मिट्टी की उर्वरक शक्ति के बारे में जानकारी मिलती है। मिट्टी में जल संचयन हेतु बरसात के पानी का संचयन, जैविक खाद (गोबर की खाद, हरित ढैंचा, प्रेसमड इत्यादि), कीट नियंत्रण हेतु प्रकृति में विद्यमान शत्रुकीट की संख्या में बढ़ोत्तरी आदि कार्य में एकीकृत कृषि प्रबन्धन जैस व्यावसायिक निर्णयों से आर्थिक अवधारणों (लागत, कीमत, माँग आदि) के विश्लेषण किए जाते है। विभिन्न प्रकार के प्रबन्धन कार्यों का लेखांकन किया जाता है, जिससे नियोजन (प्लानिंग), निर्णय तथा नियंत्रण के साथ ही विक्रय, माँग, पूर्ति, उत्पादन तथा लागत की समग्र जानकारी संख्यात्मक रूप से दर्ज की जाती है। इन दिनों लेखा–जोखा से सम्बन्धित कार्य प्रायः कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर की मद्द से किए जाते हैं। फसलों से जुड़ें इतिहास, खेतों की प्रति हेक्टेयर औसत उपज, खर्चे तथा नुकसान के भुगतान सम्बन्धित जानकारी डेटा के स्वरूप में उपलब्ध होने से कुशल कृषि प्रबन्धन के लिए लाभकारी होता है। बैंकों के डिजिटलीकरण सेवा से इन दिनों कृषि प्रबंधन में व्यापक बदलाव हुए है। इससे द्वारा मजदूरों के श्रमिकीय भुगतान, क्रय–विक्रय से संबंधित लेखा–जोखा तथा अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय कार्य–कलापों में व्यापक पारदर्शिता सुनिश्चित किया जाता है।

अन्त में प्रक्षेत्र प्रबन्धन के लिए उत्पादन कार्य से सम्बन्धित वक्र को समझना आवश्यक है जो ह्रासमान प्रतिफल के सिद्धान्त पर आधारित होता है। इसके मुताबिक किसी उत्पादन प्रक्रिया में जब किसी एक उत्पादन कारक जिसे आम बोल–चाल की भाषा में 'इनपुट' कहा जाता है, की मात्रा को अधिक बढ़ाने से प्राप्त प्रतिफल (आउटपुट), में होने वाली वृद्धि निरन्तर कम होती चली जाती है। इसे समझने के लिए अगर हम किसी प्रक्षेत्र की उपज बढ़ाने के लिए अधिक सिंचाई तथा रासायनिक उर्वरक जैसे यूरिया आदि की मात्रा बढ़ा देते है तो लागत खर्च में वृद्धि होने के साथ ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति का नाश होने के साथ ही नाशीकीटों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि होगी। भूमि के बंजर होने तथा कीड़े–मकोड़ों में प्रतिरोधक क्षमता का प्रभाव अगले कई वर्षों तक देखा जा सकता है। मुमकिन है कि ऐसे प्रक्षेत्र को कृषि के लिए योग्य ही नहीं माना जा सके। यही बात जेनेटिक मॉडीफॉयड बीज को लेकर भी है। आउटपुट यानी पैदावार बढ़ाने के लिए इन दिनों इसका व्यापक इस्तेमाल करने की सिफारिश की जाती है जबकि इसके दीर्घ कालिक परिणाम निराशाजनक साबित हो सकते हैं। पारम्परिक बीज के नष्ट हो जाने से भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के किसानों के मन में घोर निराशा छाने लगती है। इस दशा में वित्तीय संस्थाओं से कृषि कार्य हेतु प्राप्त कर्ज की अदायगी समय से नहीं हो पाने की स्थिति कभी–कभार आत्म–हत्या जैसे अप्रिय समाचार, समाचार पत्रों की सुर्खियाँ बनते हैं।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सूत्र के अनुसार खेती–किसानी के लिए उपयोगी संसाधन को दो प्रमुख वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है। पहले वर्ग में स्थाई–अति महत्वपूर्ण संसाधन कृषि करने योग्य पर्याप्त भूमि (जोत) तथा अन्य साजों सामान जैसे ट्रैक्टर, ट्यूबवेल, पशुधन इत्यादि सम्मिलित होते है। दूसरे वर्ग में खेती में काम आने वाले तमाम भौतिक संसाधन जैसे श्रमिक, बीज, खाद, पानी, ट्रैक्टर संचालन हेतु डीजल, ट्यूबवेल के लिए बिजली इत्यादि जरूरी खर्चों के भुगतान हेतु निश्चित पूँजी की आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए किसी 10 हेक्टेयर जोत वाले निम्नतम मानक के प्रक्षेत्र प्रबन्धन पर कृषि कार्य में व्यय धनराशि, उससे प्राप्त आमदनी तथा बदलते मौसम के नुकसान को कुल भौतिक वस्तु उत्पाद (टोटल फिजिकल प्रोडक्ट या टीपीपी) माने तो प्रस्तुत चित्रण में वक्र की स्थिति निम्नलिखित रूप से व्यक्त की जाती है।

1. आउटपुट के बढ़ने से वक्र के तीन स्तर (ज़ोन) I,II और III में टीपीपी का आंकलन किया जाता है। प्रबंधन सूत्र के मुताबिक ज़ोन I में टीपीपी के उत्पाद लोचमान (प्रोडक्शन इलास्टिसिटि / Ep) ठीक–ठाक यानी Ep>1 दिखता है। इस स्थिति में लाभ ही लाभ मिल सकता है। कहने का मतलब कुल खर्च तथा आय से थोड़ा अधिक मुनाफा भी मिलने की स्पष्ट भावना दिखलाई पड़ती है। एक आदर्श प्रक्षेत्र प्रबंधन ज़ोन I के नक्शे कदम पर चलने में विवश होता है।

2. फसलों की देखभाल, कटाई मड़ाई, भण्डारण इत्यादि कृषि कार्य में थोड़े से भी चूक हो जाने की स्थिति में ज़ोन I में इन्फेलेशन बिन्दु A पर पहुँचने की दशा में लोचमान Ep = 1 के बराबर होने लगता है। इस अवस्था में एक वक्र (अवतल) बनने के साथ ही एमपीपी में झुकाव के दर बढ़ते जाते है। इस तरह इनपुट में लागत भौतिक उत्पाद (मार्जिनल फिजिकल प्रॉडक्ट/एमपीपी) नीचे की तरफ झुकने को विवश होने लगता है।

   निष्कर्ष यह है कि आउटपुट में बढ़ोत्तरी करने के साथ ही प्रबंधन के इनपुट को संयमित रखना नितांत आवश्यक है। इस दशा में प्रबंधन को कुल व्यय तथा उससे प्राप्त की गई कुल आमदनी बगैर मुनाफा को प्राप्त हो सकते है।

3. ज़ोन I में टीपीपी इनफ्लेशन बिन्दु A पर पहुँचने की स्थिति में लोचमान घटने से इनपुट में घाटा बढ़ने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसे ज़ोन का अतार्किक स्तर भी कहा जाता है।

4. टापीपी के बिन्दु C पर पहुँचने की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो सकती है। इस दशा में लोचमान शुरूआती स्तर में Ep< 0 और आगे बढ़कर Ep ऋणात्मक स्थिति में चली जाती है। इसे रेशनल (तार्किक) ज़ोन कहा जाता है। निष्कर्ष यह है कि इस दशा में आय–व्यय का संतुलन बराबर होकर शून्य की स्थिति आ जाएगी।

5. अन्तिम दशा जिसे ज़ोन III के अन्तर्गत दर्शाया गया है,

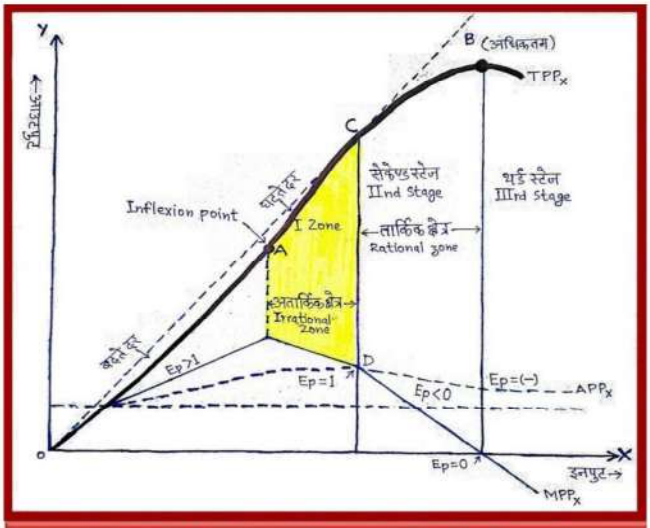

कुशल प्रक्षेत्र प्रबंधन में उत्पादन वक्र का महत्व

   में आउटपुट तथा इनपुट के क्रमशः टीपीपी और समपीपी में नकारात्मक भाव के दर्शन हो सकते है। इस दशा में लोचमान Ep= (-) नकारात्मक होता है।

कहने का मतलब है कि इस दशा में औसत भौतिक उत्पाद (एपीपी) भी नीचे उतरकर समग्र प्रबंधन को भारी नुकसान का सामना करना पड़ सकता है। प्रक्षेत्र को अगले वर्ष में कृषि के लिए अनके प्रकार के जरूरी बिल तथा अर्थदण्ड अलग जेब से जमा करवाने की नौबत आ सकती है। हांलाकि नुकसान के भौतिक कारण में मौसम तथा पारिस्थिति के प्रतिकूलता को भी शामिल किया जाता है इसलिए यह कथन सर्वथा चरितार्थ है कि खेती एक जोखिम का धंधा है और इसे उद्योग की श्रेणी से बिल्कुल अलग रखा जाता है।

एपीपी और एमपीपी हमेशा बढ़ते क्रम में रहना चाहिए ताकि ज़ोन I में प्रबंधन को कम से कम घाटा का सामना करना पड़े। इस ज़ोन में प्रबंधन को कृषि से प्राप्त आय के अलावा आय के अन्य संसाधनों को तलाशना आवश्यक है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश में प्रबंधन में जुड़े किसान पैदावार बढ़ाने के एवज में अंधाधुंध रासायनिक खाद तथा दवाओं के इस्तेमाल करते है। कैंसर तथा अन्य घातक बीमारी के प्रकोप देखे गए है। दूसरी तरफ सूखे की मार और सिंचाई में पानी की कमी से तमिलनाडु के किसान सरकारी कुप्रबंधन के शिकार होने को मजबूर है। इसलिए आउटपुट को अधिकतम रखने के लिए संसाधन संजाल को कुशल दिशा निर्देशन के अनुरूप रखना होगा। यानी आमदनी ज्यादा करने के साथ ही संसाधन और प्रबन्धन के खर्चे को काबू में रखना महत्वपूर्ण है। 'सबका साथ, सबका विकास' अर्थशास्त्र के जटिल सूत्रों का सरल प्रस्तुतीकरण होता है।

हिंदी और नागरी का प्रचार तथा विकास कोई भी रोक नहीं सकता।

– गोविन्दवल्लभ पंत।